International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 06, No. 01(IV), January - March, 2024, pp. 111-115

स्वामी दयानन्द सरस्वती का भारतीय राष्ट्रवाद : एक अध्ययन

डॉ. मंजू शर्मा*

प्रस्तावना

स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म (1824–1883) काठियावाड़ की मोरवी रियासत के टंकारा कस्बे में एक अत्यंत धार्मिक परिवार में हुआ था। सन् 1864 में स्वामी जी ने सार्वजनिक रूप से उपदेश देना प्रारंभ किया जो 1883 में उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हुआ। इस सम्पूर्ण अवधि में उन्होंने अथक् परिश्रम किया, वे सारे भारत में घूमते रहे, वाद–विवाद करते रहे, अपने विचारो का प्रचार करते रहे और आर्य समाज को जिसकी स्थापना उन्होने 10 अप्रेल 1875 को बम्बई में की संगठित करते रहे। दयानंद पारिभाषिक अर्थ में दार्शनिक नहीं थे। उन्होंने राजनीतिक सिद्धांत के योग में किसी क्रमबद्ध ग्रंथ की रचना नहीं की, किंतु अपनी रचनाओं में और कभी–कभी निजी वार्तालाप के दौरान उन्होंने राजनीतिक विचार व्यक्त किए। उनकी रचना 'सत्यर्था प्रकाश' तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका दोनों में एक–एक अध्याय ऐसा है, जिसमें राजनीतिक विचारों की मीमांसा की गई है। दयानन्द पर 'मनुस्मृति' के राजनीतिक विचारों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा था। रोम्या रोला के शब्दों में ''वे (स्वामी जी) पुनर्निर्माण और राष्ट्रीय संगठन के सर्वाधिक प्रबल पैगंबर थे।''

ऐतिहासिक तथ्य बताते है कि दयानंद 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की विफलता से अत्यन्त दुःखी थे और इसलिए उन्होंने भारत में धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में क्रियाशील रहकर राष्ट्रीय चेतना के विस्तार के लिए कार्य किया। उन्होंने भारतीयों के हृदय में स्वधर्म और स्वदेश के प्रति स्वाभिमान उत्पन्न करने और देश में नवजागरण का मंत्र फूंकने का महान् कार्य किया मूलरूप से वे राजनीतिक चिंतक नहीं थे और न ही उन्होंने किन्ही राजनीतिक सिद्धांतो का प्रतिपादन किया तथापि उनके चिंतन और व्यवहार में भारत के प्रति उत्कट प्रेम भरा था। वे भारतीय राष्ट्रवाद के अनन्य पुजारी थे।

स्वामी दयानंद ने ऐसे समय भारतीय राष्ट्रवाद और नवजागरण का संदेश दिया जब भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य का शिकंजा कसता जा रहा था, देश की पुरातन संस्कृति पर ईसाई सभ्यता छाती जा रही थी और अनेक अग्रणी समाज–सुधारक भी ईसाई प्रभाव से आक्रांत थे। ऐसे विकट और अवसाद ग्रस्त समय में महर्षि दयानन्द ने पश्चिम की चकाचौंध से प्रभावित देशवासियों में अपनी संस्कृति की महानता और देश के प्रति अनुराग जगाया और कहा कि आर्यावर्त (भारत) एक ऐसा देश है जिसके भूगोल में (विश्व में) कोई दूसरा देश नहीं हैं। भारत देश ही सच्चा 'पारस मणि' है जिसे ''लोहे रूप दरिद्र विदेशी' छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात धनाढ्य हो जाते है।

दयानंद सरस्वती के चिंतन की मूल आस्था : वेद

दयानंद वेदो को मानवीय ज्ञान का आदि और प्रमाणिक स्त्रोत मानते है। दयानंद का दृढ़ मत था कि मानव के कल्याण के लिये आवश्यक ज्ञान के सभी आयाम वेदों में समाविष्ट हैं। दयानन्द के अनुसार वेद

* सहायक आचार्य – राजनीति विज्ञान विभाग, स्व. पंडित नवल किशोर शर्मा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा, राजस्थान।

मानवीय कृति नहीं है, अपितु अपौरूषेय हैं। उनके अनुसार वेदों में निहित विचार ईश्वर द्वारा उत्कृष्टतम ज्ञान के रूप में मनुष्य मात्र के हित में उत्पन्न किये गये है तथा वेदों का अनुसरण करने से मनुष्य का सर्वतोम्मुखी कल्याण संभव है।

दयानंद सरस्वती के चिंतन में राष्ट्रवादी तत्व

दयानंद ने अपने चिंतन में भारतीय संस्कृति के गौरव और भारतीय अस्मिता का शंखनाद करके भारतीय राष्ट्रवाद को वैचारिक सबंल प्रदान किया। उन्होंने वेदों की और लोटने का आह्वान करके भारतीय जनमानस में भारतीयता के प्रति गौरव के भाव का संचार किया। उन्होंने सामाजिक जीवन में विधमान कुरीतियों, अंधविश्वास और विघटनकारी प्रवृत्तियों का विरोध कर भारतीय समाज को जागरूक बनाने और उसे एकता के सूत्र में बांधने में निर्णायक भूमिका निभाई। दयानंद के चिंतन में अन्तनिर्हित राष्ट्रवादी तत्त्वों को अग्रांकित रूप में समझा जा सकता है।

भारतीय गरिमा का उद्‌गोष

- भारतीय की स्वतंत्रता के प्रति उत्कट आग्रह स्वदेशी की भावना पर बल
- समाजिक एकता के माध्यम से राष्ट्र की सृदृढ़ता पर बल
- भारतीयों में निर्भीकता और चारित्रिक दृढ़ता के विकास पर बल
- हिंदी भाषा का प्रयोग

स्वामी दयानंद सरस्वती एवं भारतीय राष्ट्रवाद

भारतीय राष्ट्रवाद – भारतीय राष्ट्रवाद को दयानंद ने 19वीं शताब्दी में सर्वप्रथम नई दिशा प्रदान की। दयानंद ने भारतीयों के हृदय में स्वधर्म और स्वदेश के प्रति स्वाभिमान उत्पन्न करने और देश में नवजागरण फूंकने का महान कार्य किया। स्वामी दयानन्द ने ऐसे समय भारतीय राष्ट्रवाद में प्राण फूँके और नवजागरण का संदेश दिया। जब भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य का शिकंजा कसता जा रहा था, ईसाई धर्म की सभ्यता देश की पुरातन संस्कृति पर छा रही थी और अनेक अंग्रेजी समाज सुधारक भी ईसाई प्रभाव से आक्रांत थे दयानंद के भारतीय राष्ट्रवाद को हम निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते है।

- **हिंदु पुनरूत्थानवादी व आक्रामक राष्ट्रवादी**

महादेव गोविंद रानाडे, विवेकानंद एवं गांधी की भॉति दयानन्द भी अनुभव करते थे कि धर्म से ही भारत की महान विपत्तियों के समय रक्षा की है। भारत के निराशजनक व अवसादग्रस्त समय में वे हिंदू पुनुरूत्थानवाद के उग्र प्रवक्ता थे। उन्होंने अपने देशवासियों का अपने देश के धर्म, संस्कृति और गौरवपूर्ण अतीत की और ध्यान आकर्षित किया तथा उन्हे बताया कि भारत जैसा देश विश्व में कोई नहीं है। इस प्रकार के विचार देश की मुक्ति के वाहक तथा सांस्कृतिक विकास के माध्यम बने। उनके नेतृत्व में आर्यसमाज ने बचाव की नीति को छोड़कर आक्रामक नीति को अपनाई।

भारत के पुनुरूत्थान के लिए उन्होंने ' वेदो के युग में लौट चलने का नारा दिया तथा संदेश दिया कि वैदिक धर्म ही सत्य और सार्वदैशिक है इस प्रकार उन्होंने जिस पुनर्जागररण को जन्म दिया, उसके कारण ऐसे वातावरण का निर्माण हुआ, जिसमें राजनीतिक दासता को अधिक समय तक सहन नही किया जा सकता। आर्य समाज ने भारतीय राष्ट्रवाद व स्वतंत्रता संघर्ष को अनिवार्य गति प्रदान की।

- **भारतीय गरिमा का उद्‌गोष**

दयानंद ने वैदिक ज्ञान और वैदिक मूल्यों की सर्वोच्चता और उत्कृष्टता का उद्‌गोष करके भारतीयों में अपने गौरवमय अतीत और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के प्रति अभिमान का भाव जाग्रत किया। वेदों और अन्य भारतीय गौरव–ग्रंथों की प्रमाणिक और वैज्ञानिक व्याख्या करके दयानंद ने भारतीय जनता को यह मार्ग सुझाया

कि अंधविश्वासों, असमानताओं और रूढ़ियों से मुक्त तथा उदार मानवीय मूल्यों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना तथा लोकतांत्रिक आदर्शों और जनकल्याण से प्रेरित राजनीतिक प्रणाली के लिये भारतीयों को विदेशों से प्रेरणाएँ प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है, अपितु चिंतन, मूल्यों व ज्ञान की भारतीय विरासत के प्रति जागरूक और समर्पित होकर भारतीय जनता अपने खोये हुए आत्म–गौरव को पुनः अर्जित कर सकती है।

दयानंद ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि भारत की पराधीनता का मुख्य कारण यह रहा है कि भारतीय जनता ने वेदों में प्रतिपादित जीवन मूल्यों और आचरण के नियमों की उपेक्षा करनी प्रांरभ कर दी। उनके अनुसार वेदोक्त जीवन पद्धति से हटकर भारतीय लोग चारित्रक पतन के मार्ग पर चल पड़े परिणामस्वरूप विदेशियों ने भारत पर अधिपत्य कर लिया।

- **स्वराज**

तिलक से भी पूर्व ''स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है'' का उद्घोष करने वाले दयानंद थे। उनके लिए 'भारत सिर्फ भारतीयों के लिए ही है। एनीबेसेन्ट के अनुसार,'' स्वामी दयानंद ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने ' हिंदुस्तान, हिन्दुस्तानियों के लिए' का नारा लगाया था।'' अपनी पुस्तक 'आर्याभिविनय' की प्रार्थनाओं में उन्होंने ईश्वर से यह कामना की है कि ''दूसरे देशों के राजा हमारे देश में कभी न हो और हम कभी पराधीन न हों।'' तथा ''हमारी सहायता करो, जिससे सुनीतियुक्त होकर हमारा स्वराज आगे बढ़े।''

दयानंद प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने 'सुशासन' एवं 'स्वशासन' में स्पष्ट अंतर को समझाया दयानंद ने ही 'सुराज' और 'स्वराज्य' को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया। उन्होंने ही यह प्रमाणित किया कि 'सुशासन कभी स्वशासन का स्थान नही ले सकता चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हों।'' इस समय तक कभी किसी ने स्वशासन का अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किया था, अतः भारतीयों के लिए स्वशासन का प्रथम संदेश दयानंद ने ही दिया। दयानंद का 'भारत भरतीयों के लिए' नारा कलकत्ता अधिवेशन के दौरान कांग्रेस का आधार बन गया। दादाभाई नौरोजी ने कलकत्ता अधिवेशन इसकी पुरजोर मांग की इस तरह स्वराज के प्रथम संवाहक के रूप में दयानन्द उभरे। उन्होंने कहा ''विदेशी शासन भले ही मत–मतान्तरो के पूर्वाग्रहों से मुक्त हो, पक्षपात–शून्य, दयालु,कल्याणकारी और न्यायशील हो, तब भी वह सुखमय नहीं माना जा सकता।

- **स्वराज**

भारत में, व्यापक स्तर पर सर्वप्रथम राजनीतिक स्तर पर स्वदेशी आंदोलन बंगाल–विभाजन के बाद शुरू हुआ था परंतु सर्वप्रथम दयानंद ने ही देश को स्वदेशी का मंत्र प्रदान किया। दयानन्द ने भारतीयों को आह्मन किया कि स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करें, एवं स्वयं की जीवन–पद्धति व मूल्यों की प्रणाली का महत्व समझकर उसका समुचित सम्मान करें। स्वदेशी की भावना के प्रति उदार और निर्मल भावना स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने कहा कि उनका अभीष्ट स्वदेशी मूल्यों और मान्यताओं के प्रति अनावश्यक आग्रह को अभिव्यक्त करना नहीं, अपितु सत्य की प्रतिष्ठा करवाना तथा असत्य का परित्याग करवाना है। उन्होंने घोषित किया कि स्वदेशी और विदेशी का भेदभाव करते हुए अधर्मयुक्त प्रवृत्तियों का समर्थन करना अथवा स्वदेशी या विदेशी के पूर्वाग्रह से प्रेरित होकर धर्मयुक्त बातों का परित्याग करना, मानव धर्म से असंगत है। दयानन्द भारतीय भारत के प्रतीक थे। दयानन्द ने भारत को स्वदेशी का वैचारिक आधार प्रदान किया, जिस पर गांधी के जन–आंदोलन का भव्य भवन निर्मित हो सका।

- **स्वभाषा या हिंदी भाषा का प्रयोग**

दयानन्द ने स्वीकार किया कि जनसामान्य में सर्वाधिक प्रचलित भाषा को सबके द्वारा अपनाये जाने से ही देश की भावात्मक एकता को सुरक्षित एवं सुनिश्चित किया जा सकता है। इसलिए स्वयं की मातृ–भाषा गुजराती होते हुए भी तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए भी, उन्होंने अपने व्याख्यानों और संदेशों को देश के कौने–कौने में पहुँचाने में हिंदी भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' सहित अपने सभी महत्वपूर्ण

ग्रंथों की रचना सरल हिन्दी में ही की थी। दयानंद ने एक शताब्दी पूर्व ही यह समझ लिया था कि भारतीय विद्यार्थी को विदेशी माध्यम से शिक्षा देना उसके विकास को अवरूद्ध करना है। दयानन्द आधुनिक युग में हिन्दी के प्रमुख संरक्षकों में से थे।

- **भारत की स्वतंत्रता के प्रति आग्रह**

स्वामी जी ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग नहीं लिया, तथापि भारत की स्वतंत्रता के प्रति आग्रह उनके चिंतन में भली–भांति व्यक्त हुआ। उन्हे इस तथ्य की गंभीर वेदना थी कि भारत को विदेशियों ने पदक्रांत कर रखा है। उन्होंने कहा ''विदेशी शासन भले ही मत–मतान्तरों के पूर्वाग्रहों से मुक्त हो, पक्षपान शून्य, दयालु, कल्याणकारी और न्यायशील हो, तब भी वह सुखमय नही माना जा सकता।''

- **आत्म–विश्वास और स्वावलम्बन की चेतना**

दयानंद का विश्वास था कि आत्मविश्वास के अभाव में स्वराज कभी प्राप्त नहीं हो सकता। ब्रिटिश पराधीनता में भारत की आर्थिक एवं राजनीतिक दुर्दशा हो रही थी। दयानंद ने भारतीयों को ऐसे अंग्रेजी कुशासन के विरूद्ध सावधान किया, जो उनकी दुर्दशा का कारण था। उनका कहना था कि अंग्रेजी शासन के समान अनियंत्रित व संप्रभु शक्ति नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों के लिये स्वतंत्रता और उच्चतर मूल्यों की प्राणवायु की खिड़की को खोल दिया। वीर सावरकर ने कहा है, ''महर्षि दयानंद स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा और हिंदू जाति के रक्षक थे।''

- **विवेकहीन परम्पराओं और अंधविश्वासों पर प्रहार के माध्यम से भारतीय समाज की उन्नति**

दयानन्द ने अनुभव किया कि भारतीय समाज को जागरूक बनाकर ही भारतीय समुदाय की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः सुनिश्चित किया जा सकता है उन्होंने भारतीय समाज में फैले अनेक अन्धविश्वसों और कुरीतियों जैसे – अस्पृश्यता विधवा–विवाह का निषेध, बाल–विवाह, स्त्रियों की शिक्षा और उनकी स्वतंत्रता का निषेध, विदेश यात्रा निषेध आदि की दृढ़ता पूर्वक विरोध किया। साथ ही यह भी स्वीकार किया कि पारस्परिक फूट, अज्ञान, चारित्रिक पतन और अनेक सामाजिक कुरीतियों के कारण ही भारत पर विदेशियों का अधिपत्य हुआ है एवं भारत की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दासता का कारण बना है। डॉ. रफीक जकारिया के अनुसार भारत की दुखद फूट को समाप्त करने के लिये सामाजिक दृष्टि से देश को एकता के सूत्र में बांधने के लिये दयानन्द जातियों एवं सामाजिक वर्गो के भेद–भाव को समाप्त करना चाहते थे।''

- **रजवाड़ो में सुधार**

स्वामी दयानन्द का क्षेत्र राजनीति नहीं था पर उन्होंने देखा कि 1857 की क्रांति में असफलता का एक प्रमुख कारण यह था कि तत्कालीन देशी रियासतें तटस्थ रहीं। अतः उन्होंने देशी रजवाड़ो को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। थोड़े से समय में ही बड़ौदा, उदयपुर, जोधपुर, इंदौर, कोल्हापुर तथा शाहपुरा राज्य के नरेशों के जीवन में उनके उपदेशों से जो सुधार हुआ उसका हितकर परिणाम उनके व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होने लगा और उनके राज्यों की व्यवस्था भी सुधारने लगी। भारतीय राष्ट्रवाद को सबल बनाने हेतु महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में भारतीय नरेशों के व्यक्तिगत जीवन में बदलाव पर विशेष प्रयास किये।

- **राष्ट्रीय परंपरा के जनक एवं प्रजातंत्र के पोषक**

महर्षि दयानंद के इन विचारों और कार्य–कलापों से स्पष्ट है कि वे उस राष्ट्रवादी परम्परा के जनक थे जिसका चरमोत्कर्ष हम लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, अरिवंद और लाला लालपत राय में देखते है। कई महत्वपूर्ण बातों में तो वे महात्मा गांधी के अग्रवाहक थे। दयानंद ने जो आंदोलन, उससे आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न हुई और भारतीयों में आत्मसम्मान की भावना को जोर पहुंचा। स्वामी दयानंद लोकतंत्रवादी थे। लोकतांत्रिक आदर्शो पर आधारित प्राचीन भारत की राजनीतिक परंपरा में उनकी पूर्ण निष्ठा थी।

- **कांग्रेस के पूर्वगामी**

यद्यपि सन् 1885 में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना अंग्रेजी साम्राज्य की रक्षा के लिये एक सुरक्षा–कपाट के रूप में हुयी थी। परंतु बीसवीं सदी में प्रारंभ से ही कांग्रेस ने कटु राजनीतिक अनुभवों एवं वास्तविकताओं के प्रकाश में उन अनेक नीतियों को अपनाना प्रारंभ किया जिनका प्रतिपादन स्वामी विवेकानंद ने किया था।

1905 में बंग–भंग आंदोलन के पश्चात् तिलक ने स्वराज एवं स्वदेशी का नारा दिया उसके प्रेरणास्त्रोत दयानन्द ही थे। उन्होंने दयानंद को भारत में स्वराज का प्रथम संदेशवाहक भी बताया है। महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दयानंद के विचारों का अनुसरण किया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दयानन्द ने सूत्रबद्ध रूप में राष्ट्रवाद का उद्घोष न करते हुए भी अपने विचारों से राष्ट्रवादी स्वर को प्रखर अभिव्यक्ति दी। आर्य समाज जैसी संस्था की स्थापना के द्वारा उन्होंने देश में धार्मिक सामाजिक, चारित्रिक व मानसिक सुधारों के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में संगठित एवं संस्थागत प्रयासों का भी सूत्रपात किया। उन्होंने आधुनिक युग में भारतीय राष्ट्रवाद को स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया। श्री रोम्या रोला के शब्दों में स्वामी दयानन्द पुनर्निर्माण और राष्ट्रीय संगठन के सर्वाधिक प्रबल पैगम्बर थे। सारांश में स्वामी दयानंद को भारत में राष्ट्रवाद की परम्परा का सूत्रपात करने वाले प्रथम विचारक के रूप में शामिल किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वामी दयानन्द : सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ –44
2. महर्षि दयानंद सरस्वती, ऋग्वेद भाष्य, ऋग्वेदादि–भाष्य भूमिका, आर्य समाज शताब्दी संस्करण पृष्ठ–17
3. डॉ. मधुकर श्याम चतुर्वेदी, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2015 पृष्ठ 166
4. डॉ. श्याममोहन अग्रवाल, डॉ. महेन्द्र सिंह पलसनिया, भारतीय राजनीतिक विचारक, आस्था प्रकाशन, जयपुर 2010 पृष्ठ 116–117
5. सत्यार्थ प्रकाश, दशम समुल्लास, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, विक्रम संवत, 2003, पृष्ठ 166–167
6. उपर्युक्त, पृष्ठ 141
7. उपर्युक्त स्वयन्तव्यामन्तव्य प्रकाश, पृष्ठ 382
8. सत्यार्थ प्रकाश, दशम समुल्लास, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, विक्रम संवत 2003 पृष्ठ 141
9. डॉ. रफीक जकारिया, इण्डियन रिनांसा, पृष्ठ 38
10. शिवचन्द हिन्दुस्तान, 29 अक्टूबर 1970 में प्रकाशित लेख :निर्भीक संन्यासी स्वामी विवेकान्द
11. डॉ. श्याम मोहन अग्रवाल, डॉ. महेन्द्रसिंह पलसानिया, भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर 2015 पृष्ठ 120

❖◆❖